''बिहार में 'कमिया अछूतों' के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का मूल्यांकन''

रौशन कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला वि0वि0 कामेश्वरनगर, दरभंगा
ई–मेल : raushankumarsanu@gmail.com
मो0– 8298219076, 7991179120

सारांश

कमिया' मुख्यतः समाज क ऐसे भूमिहीन समुदाय थे जो अपनी पूरी जिन्दगी अपने मालिक की सेवा से बँधे होते थे। अर्थात् इसे बँधुआ मजदूर भी कहा जाता था, जो बिमारी का इलाज एवं संकट की अन्य परिस्थितियों में अपने जमींदार मालिक से लिए गए कर्ज के बदले उनके अधीन हो जाते थे। यह वर्ग आर्थिक एवं सामाजिक रूप से काफी पिछड़ा हुआ समाज था। बिहार की आबादी का एक बड़ा भाग इन 'कमिया' अर्थात् बँधुआ मजदूरों का था। धीरे–धीरे इसने बिहार की एक सामाजिक प्रथा का रूप ग्रहण कर लिया।

बंगाल में अग्रेंजी राज की स्थापना के पश्चात् भी यह व्यवस्था बदस्तूर जारी रहा। कुछ ब्रिटीष 'अधिकारियों' ने तो इसे वैद्य मानकर इस प्रथा को मान्यता भी दे दिया था। फलतः यह प्रथा कई दषकों तक बिहार में जारी रहा। 'कमियों की आर्थिक स्थिति अत्यंत ही दयनीय थी। विभिन्न साधनों से एक 'कमिया' परिवार सालाना लगभग 400 सेर चावल, चालीस सेर मोटा अनाज, तीन रूपया एवं खाने–पहनने की कुछ वस्तुएँ ही एकत्रित कर अपना गुजर–बसर कर पाते

थे। महिलाएँ एवं पुरूष भी मालिकों द्वारा दिए गए कुछ पुराने वस्त्रों से ही जीवन–निर्वाह करते थे। साथ ही 'कमियो' से तरह–तरह की बेगारियाँ भी ली जाती थी और इन्हें मजदूरी भी नाम मात्र ही दिया जाता था। आज भी बिहार के कुछ हिस्सों में ऐसी 'कमियौती प्रथा', विभिन्न रूपों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रचलित है।

मुख्य शब्द : कमिया, अछूत, भू स्वामी जमींदार पलामू, बिहार

प्रस्तावना

बिहार की आबादी का एक बड़ा हिस्सा 'कमिया' अर्थात् बँधुआ' मजदूरों का था। यह समाज के मूलतः ऐसे भूमि विहिन वर्ग थे जो जीवनपर्यन्त अपनी मालिक के अधीन, उनकी सेवा से ही बँधे होते थे। चूँकि यह वर्ग भूमिहिन था और जमींदारों एवं बड़े–बड़े भू–रैयतों के यहाँ काम कर किसी प्रकार अपना जीवन गुजारा करते थे। अतः शादी–विवाह, बिमारी का इलाज एवं अन्य विषम परिस्थितियों में इन्हें जमींदारों या अपने भू–स्वामी मालिकों से कर्ज लेना पड़ता था और कर्ज लेने से पूर्व एक प्रकार का बांड (इकरारनामा) बनवाया जाता था, जिसमें 'कमिया' यह करार करता था कि जब तक वह कर्ज की राषि वापस नहीं लौटा देगा; तब तक वह, उसकी पत्नी, उसकी बहू एवं आने वाली पीढ़ी भी उसी भू–स्वामी या जमींदार के यहाँ काम करती रहेगी। नियमतः 'कमिया' जमींदारों से कर्ज ली गई राषि वापस लौटकर उस मालिक की सेवा से मुक्त हो सकता था, किन्तु जमींदार उसे ऐसा करने का अवसर ही नहीं देते थे। किसी–किसी करार (बांड) में कर्ज लौटाने के लिए जेठ (जून–जुलाई) महीने का भी निर्धारण कर दिया जाता था, क्योंकि यह अवधि

मजदूरों के लिए बेरोजगारी का समय होता था और 'कमिया' के पास जो भी राषि बची होती थी; वह खत्म हो जाती थी। फलतः ऐसी स्थिति में 'कमिया' चाह कर भी कर्ज की राषि चुकाने में अक्षम हो जाती थी और पीढ़ी–दर–पीढ़ी एक मालिक के सेवा से ही बँध जाती थी। 'कमिया' वर्ग की एक दूसरी श्रेणी भी थी जो भू–स्वामी से बिना कर्ज लिए हुए भी कम–से–कम एक साल के लिए एक ही मालिक से बँधे होते थे। धीरे–धीरे इसने एक सामाजिक प्रथा का रूप धारण कर लिया।

बिहार के विभिन्न हिस्सों में 'कमिया' या 'बँधुआ मजदूर प्रथा अलग–अलग नामों से जाना जाता था। संपूर्ण मिथिलांचल में इसे 'बहिया या 'बरजाना' प्रथा, शाहाबाद एवं बेगूसराय में 'हरवारी' मुजफ्फरपुर भागलपुर तथा चम्पारण में 'जानौरी' एवं गया के कुछ क्षेत्रों में 'सौंक' या 'सावंक' के रूप में जाना जाता था।[1]

बंगाल में ब्रिटिष शासन की स्थापना के बाद भी यह प्रथा निरंतर जारी रही। ब्रिटिष इस्ट इंडिया कंपनी के कुछ अधिकारियों ने इस प्रथा को जायज (वैद्य) मानकर, इसे मान्यता प्रदान कर चुका था। हालांकि 1811 ई0 में एक ब्रिटिष अधिकारी ने किसी भी प्रकार के दास प्रथा पर रोक लगाने का आदेष तो जारी किया, किन्तु वह व्यवहार में नहीं लाया गया क्योंकि उसमें 'दासता' को स्पष्ट रूप से परिभाषित ही नहीं किया गया था। परिणामस्वरूप यह प्रथा कई दषकों तक बदस्तूर जारी रहा।[2]

छोटा नागपुर एवं पलामू में 'कमिया' प्रथा का उल्लेख काफी पूर्व से प्राप्त होता है। हैमिल्टन ने 'डिस्क्रिप्सन ऑफ हिन्दुस्तान में यह लिखा है

कि ' पष्चिमी बिहार में 'कमिया' का उपयोग सामान्य तौर पर हलवाहों तथा चरवाहों के रूप में किया जाता था।[3] 1808 ई0 में रिचर्डसन ने भी लिखा कि – 'इस्ट इंडिया कंपनी के अधीन काम करने वाले मजदूरों या श्रमिकों की एक बड़ी आबादी 'कमिया' अछूतों की थी।' क्रिमिनल लॉ कमीषन ने भी यह उल्लेख किया था कि तत्कालीन दक्षिण बिहार में झगड़े, चोरी एवं हत्या जैसे अन्य अपराधों के लिए जमींदार या बड़े भू–स्वामी इसी वर्ग (कमिया) का उपयोग करते थे। रामगढ़ के कलेक्टर मि0 कथबर्ट ने 1827 ई0 में अपनी एक रिपोर्ट में पलामू के 'कमियों' का उल्लेख किया है। लगभग बारह (12) वर्षों तक पलामू के ए0डी0ओ0 रहे मि0 फोर्बिस ने 'कमियो' के एक बड़े समूह के रूप में जिक्र करते हुए उसे बँधुआ बताया। पलामू डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (1907 ई0) में भी 'कमियों के बारे में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त छोटानागपुर डिवीजन के सेटलमेन्ट अधिकारी टी0डब्ल्यू0 ब्रिज ने पलामू के 'कमियो' के बारे में अलग से अपनी एक विषेष रिपोर्ट तैयार की।

1918 ई0 में पलामू जिले में 'कमिया' अछूतों की आबादी; जिले की कुल आबादी का 12 प्रतिषत अर्थात् लगभग साठ हजार (60,000) के आस–पास थी। 'कमिया' विषेषकर चमार, दुसाध, कहार एवं भुईया जातियो के लोग होते थे। विभिन्न कमियौती बांड्स (करारनामों) से यह ज्ञात होता है कि 'कमिया' मुख्य रूप से शादी–विवाह के लिए बेरोजगारी के दिनों में अन्न की व्यवस्था के लिए, मृतक के श्राद्ध कर्म के लिए तथा बिमारी का इलाज कराने के लिए जमींदारों या भू–स्वामियों से कर्ज लिया करते थे। अधिकांष करारनामा केवल लिखित होते थे, पंजीकृत नहीं। कुछ बाड्स तो केवल मौखिक ही होते

थे। किन्तु यह कर्ज की राषि समय अंतराल पर बढ़ती रहती थी, जिसे 'कमिया' अपनी जीवनावधि में चुकाने को असमर्थ होते थे और उम्र भर अपने मालिक की सेवा से ही बँध जाते थे। बिहार–उड़ीसा के राजस्व विभाग के सचिव ई0एल0 टैनर ने अप्रैल, 1918 में तिरहुत, पटना, भागलपुर एवं छोटानागपुर के आयुक्तों को पत्र लिखकर कमिया प्रथा पर विस्तृत रिपोर्ट तैयार करने का निर्देष दिया।[4]

चूंकि उन दिनों बिहार की अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि आधारित ही थी और कमिया भूमि विहिन वर्ग था। हालांकि कुछ कमियों को जिविकोपार्जन के लिए सबसे निम्न किस्म वाली भूमि दी जाती थी और उस पर लगान की राषि भी अत्यधिक थी। पलामू जिले के भू–सेटलमेंट अधिकारी टी0 डब्ल्यू0 ब्रिज ने 'कमियों' की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का एक सर्वेक्षण कराया था। यह सर्वेक्षण जिले के लगभग तीन–चौथाई (3/4) हिस्सों में करवाया गया था। इन कृषि कर्म से 'कमियो' का जीवन–यापन लगभग असंभव था। अपनी भूख को मिटाने के लिए 'कमिया' जंगल से विभिन्न कंद–मूल एवं फल इकट्ठा करते थे एवं इसका कुछ हिस्सा हाट–बाजार में बेच लेते थे। हालांकि 'कमिया' को जंगल से ये सामाग्रियाँ लाने की छूट तो अवष्य थी, किन्तु इसे बाजार में बेचने की अनुमति नहीं थी। वैसे भी जंगली कंद–मूल या फल; भूख शांत करने के साधन हो सकते थे किन्तु 'कमियों' की आय का स्त्रोत नहीं। इसके अतिरिक्त कमियों को महुआ से थोड़ी बहुत आमदनी हो जाती थी, किन्तु जमींदारों एवं भू–स्वामियों के द्वारा महुआ पर लगान का भारी बोझ लगा दिया गया था और महुआ के कुछ पेड़ों को अपने अधीन भी ले लिया। ऐसी स्थिति में अतिरिक्त आमदनी एवं गुजर–बसर के लिए 'कमियों' के पास जमींदारों या

भू–स्वामियों के यहाँ काम करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प भी नहीं था।[5] दी जाने वाली मजदूरी की अपेक्षा काफी कम थी। तत्कालीन राजौली थानान्तर्गत एक सामान्य खेतिहर मजदूर को तीन सेर कच्चा अनाज और एक सेर जलपान मिलता था, वहीं 'कमिया' अछूतों को केवल ढाई सेर कच्चा अनाज और एक सेर जलपान दिया जाता था। जमींदार या बड़े–बड़े भू–स्वामी फसल के व्यस्त मौसम में अपने 'कमियों' को मजदूरी करने के लिए बाहर जाने का कोई भी मौका नहीं देना चाहते थे। अतः कटनी के मौसम में 'कमियों' को अन्य खेतिहर मजदूरों की तुलना में अधिक बोइन दिया जाता था। सामान्यतः 'कमियों' को 10–15 बोझा पर एक बोझा मजदूर को 20–21 बोझ पर एक बोझा और सामान्य खेत–बोइन दिया जाता था।

फसल के व्यस्त दिनों में 'कमियों' को प्रतिदिन 2–3 सेर कच्ची भूसीवाला अनाज या दो से ढाई सेर बिना भूसीवाला मोटा अनाज दिया जाता था। देर से काम पर आने वाले एवं पहले जाने वाले 'कमियों को थोड़ा कम अनाज दिया जाता था। जिस फसल की कटाई 'कमिया करते थे, उन्हें वही फसल बोनि/बोइन के रूप में दिया जाता था। उस नए अनाज की कीमत वर्तमान समय में कम रहती थी। कृषि कर्म के दौरान बैलों को तो अवष्य बदला जाता था, किन्तु 'कमियों' को पूरे दिन काम करना होता था। 'कमिया' को देने वाले बोइन के बोझे का भी निर्धारण भू–स्वामी या जमींदार स्वयं ही करते थे। अकाल पड़ने, जमींदारों या भू–स्वामियों की स्थिति खराब होने और फसल अच्छी नहीं होने की स्थिति में 'कमियों' के बोइन में कटौती की जाती थी। अगर भू–स्वामी या जमींदारों और उसके फसलों की स्थिति अच्छी होती थी तो

'कमियों' को वर्ष में लगभग 240–250 दिनों तक काम आसानी से मिल जाया करता था। 'कमियाँ' वर्ग की महिलाएँ भी अपने मालिक के घर गोबर पाथकर साफ–सफाई इत्यादि काम कर भोजन की व्यवस्था कर लेती थीं। इसके अतिरिक्त कमियाँ के बच्चे भी जमींदार मालिक के गाय, बकरी आदि पशुओं को चराकर कुछ आमदनी कर लेते थे। चरवाहे के रूप में 'कमिया' के बच्चे को प्रति महीने दो पैसे से आठ आने तक मजदूरी दिया जाता था। इन दिन भर के कार्यों के अतिरिक्त 'कमियों' को जमींदार मालिक के फसलों की रखवाली भी करनी होती थी।

विभिन्न माध्यमों से 'कमिया' के एक परिवार की वार्षिक आमदनी का कुल आकलन करे तो लगभग 400 सेर चावल, 40 सेर मकई, तीन रूपया और खाने एवं पहनने की कुछ वस्तुएँ ही वार्षिक जुटा पाते थे। इतने में ही उसे एक वर्ष की सभी आवष्यकता एवं जरूरतों को पूरा करना होता था। बीमार पड़ने और बुढापे की स्थिति में 'कमियों' की आर्थिक दषा अत्यन्त ही दयनीय हो जाती थी, जिसका अंदाजा लगाना भी अत्यधिक कठिन है। कुछ 'कमिया' अपनी आर्थिक स्थिति बेहतर बनाने के लिए मुर्गी एवं सुअर भी पाला करते थे।

'कमियों' के पास तन ढकने के लिए केवल कुछ जरूरी कपड़े ही होते थे। उनके बच्चे सामान्यतः 9–10 वर्ष की आयु तक नंगे ही रहते थे। पुरूष 'कमियों' के पास प्रायः दो से अधिक धोती नही होती थी। सर्दी के दिनों में इसी धोती को गांती बनाकर जीवन–यापन करते थे। महिलाओं के पास भी दो (2) साड़ियाँ एवं एक–दो ब्लाऊज ही होता था। बच्चे फटे–पुराने कपड़ो से

गुजारा कर लेते थे। इसके अतिरिक्त, 'कमियो' के घर में एक या दो खाट (खटिया) एक कांसे की थाली, एक लोटा और कुछ मिट्टी एवं लकड़ी के बर्तन ही होते थे।[6]

'कमिया' (विषेषकर; पलामू जिले के कमियों) की जरूरतों के हिसाब से एक न्यूनतम आर्थिक मानदंड निर्धारित किया गया था। जिसके अनुसार श्रमिकों (महिला या पुरूष दोनों) को प्रतिदिन लगभग एक सेर अनाज, कामकाजी बच्चे को दस (10) छटांक अनाज, आश्रित बुजोर्गों (गैर– कामकाजी) को 3/4 सेर अनाज और गैर–कामकाजी बच्चे को 1/4 से 1/2 सेर अनाज दिया जाता था, जबकि 'कमिया' मजदूर एवं उसके परिवार को प्रतिदिन पेट भरने के लिए कम–से–कम तीन सेर पक्की अनाज की जरूरत होती थी।[7]

'कमियो' का विद्रोह :

जमींदारों या भू–स्वामियों का अत्याचार या शोषण, अप्रत्याषित लगान, आय के स्त्रोतों की नितान्त कमी, बेगारी नाम मात्र मजदूरी इत्यादि स्थितियों के कारण पलामू जिले के कमियो ने काफी भयावह रूप धारण कर लिया। हालांकि 'कमियों' के एक वर्ग (बुजुर्ग) ने किसी तरह अपने आप को इस परिस्थिति में ढाल चुका था, किन्तु नवयुवकों के लिए ऐसी स्थिति में जीवन–यापन करना काफी कठिन था। अतः 'कमियो' का यह वर्ग (युवा) धीरे–धीरे अपराध से जुड़ गया। 1827 ई0 में रामगढ़ के जिला कलेक्टर मि0 कथबर्ट ने पलामू के 'कमियों' की इस भयंकर सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दषा के बारे में एक विस्तृत रिपोर्ट भी तैयार किया था।

11 दिसम्बर, 1831 को पलामू राँची एवं सिंहभूम में कोल विद्रोह उत्पन्न हो गया, जिसमें मुंडा और उरांव जन–जातियों के साथ–साथ भुइया एवं अन्य पिछड़ी जातियों के कमिया भी बड़ी संख्या में शामिल हुए। पलामू इस विद्रोह का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण केन्द्र था। किन्तु दिसम्बर, 1832 में इस विद्रोह का दमन कर, सरकार ने विद्रोहियों की पूरी संपत्ति एवं गाँव जमींदारों के हवाले कर दिया।

'कमियों' के विद्रोह एवं हिंसा की घटनाएँ समय अंतराल पर छिट–पुट रूप से प्रदेष में घटित होती रहीं और 'कमिया' तथा 'कमिया' बनने की कगार पर पहुँच चुके कुछ पिछड़ी जातियों ने अनेक रूपों में जमींदारों के खिलाफ अपना विद्रोह दर्ज करते रहे। अकाल के समय ये 'कमिया' जमींदारों के गोदामों से अनाज को लूट लेते थे। यही नहीं; अवसर मिलने पर कुछ जमींदारों की हत्या जैसी घटनाएँ भी घटित होती रहती थी। तत्कालीन समय में शाहबाद और पटना जिले में जमींदारों या भू–स्वामियों के हत्याओं की कुछ अपराधिक घटनाएँ घटित हुई थी, जिसमें पीट–पीटकर कुछ जमींदारों की हत्या कर दी गई थी। इस हत्याकांड मं कई 'कमियो' या 'कमिया' बनने की स्थिति में पहुँच चुके कई गरीब पिछड़ी जातियों के लोगों को आजीवन कारावास की सजा हुई।[8] 'कमियों' ने इसी प्रकार मार्च, 1912 में सासाराम के एक बड़े जमींदार वासुदेव नारायण सिंह की हत्या कर दी। इसके अतिरिक्त 'कमियों' द्वारा भू–स्वामियों या जमींदारों और उनके मैनेजरों (प्रबंधकों) की हत्या का कुछ अन्य उल्लेख भी हमें प्राप्त होता है।[9]

'कमियौति' संबंधित कानूनी निर्णय एवं अधिनियम :–

हालांकि 1843 ई0 के अधिनियम–(5) में कृषि भू–दासों को कुछ राहत एवं सुरक्षा देने का प्रावधान अवष्य किया गया था, किन्तु उसमें किसी भी प्रकार के दासता एवं बँधुआ उन्मूलन का न तो कोई विषेष प्रावधान था और न ही प्रयास। 'कमियौती' प्रथा की बुराईयों को यथासंभव कम करने के उद्देष्य से 1859 का अधिनियम– XIII और 1860 का अधिनियम–IX बना, किन्तु इसे पलामू एवं छोटानागपुर में लागू करने की कभी कोषिष तक नहीं की गई। वैसे 'कमियौती' या 'कमिया प्रथा' पर बिहार में कानूनी निर्णयों में पहला मामला संभवतः बांका जिले का ही प्रतीत होता है, जिसमें निर्णय 'कमियो' के पक्ष में ही सुनाया गया था। इस मामले में न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि– 'इकरारनामें की शर्तों और दासता की शर्तों में कोई विषेष अन्तर नहीं है। अतः 'कमिया प्रथा' को लागू नहीं किया जा सकता है।[10] 1918 ई0 में एक मामले में न्यायालय ने इकरारनामे को दासता का बॉण्ड बताते हुए उसे गैर–कानूनी एवं निष्प्रभावी साबित कर, फैसला 'कमियों के पक्ष में सुनाया।[11]

'कमिया' या 'कमियौती' प्रथा की बुराईयों एवं शोषण को कुछ करने के लिए 1919 ई0 में सर वाल्टर मॉड ने बिहार–उड़ीसा विधान परिषद् में 'दि बिहार एंड उड़ीसा एग्रीकल्चरल लेबरर्स बिल, 1919 पेष किया। इस बिल को पेष करते हुए मॉड ने कहा था कि इस बिल का उद्देष्य 'कमियौती या 'कमिया' प्रथा की बुराईयों को जहाँ तक संभव हो कम करना है। स्पष्ट है – इस बिल का उद्देष्य 'कमियों' के शोषण को कुछ कम करना था; इस प्रथा को

समाप्त करना नहीं। बहरहाल, विधान परिषद में इस बिल पर खूब बहस हुई। अधिकांष सदस्यों ने तो इस विधेयक (बिल) का समर्थन किया, किन्तु कुछ सदस्यों ने इस बिल पर आपत्ति भी जताई।[12] इन्हीं दिनों 'चैतन्य चन्द्रिका' नामक पत्रिका में 'बिहार प्रांत में कमिये की प्रथा' शीर्षक से एक लेख प्रकाष्ति हुआ, जिसमें 'कमियों की भयानक सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दषा का काफी मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करते हुए लिखा – 'बिहार उड़ीसा के बड़े–बड़े भू–स्वामी और जमींदार इस बिल के विरोधी थे। वे इसमें किसी का भी हस्तक्षेप उचित नहीं मानते थे।[13] 1920 ई0 में पहला 'कमियौती' अधिनियम 'दि बिहार एंड उड़ीसा कमियौती एग्रीमेंट्स एक्ट, 1920 अस्तित्व में आया, किन्तु छोटा–नागपुर उत्तरी चंपारण तथा बिहार के कुछ अन्य हिस्सों में यह प्रथा आज भी विभिन्न रूपों में प्रचलित ही है।[14]

निष्कर्ष :

'कमिया' अछूतों का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन अत्यंत ही दयनीय एवं बद से बत्तर था। एक गुलाम के जैसी उनकी स्थिति हमेषा बनी रही। विभिन्न प्रकार से उनका सामाजिक आर्थिक एवं मानसिक दोहन होता रहा। उन्हें जन्म से मृत्यु तक अपने मालिक/भूस्वामी की सेवाओं से बँधा रहना पड़ता था। भू–स्वामियों या जमींदार मालिकों के द्वारा 'कमियों' को मारने पीटने और गाली–गलौज सामान्य बात थी। हालांकि ब्रिटिष शासन के दौरान कुछ कानून एवं अधिनियम के माध्यम से 'कमियौती प्रथा' की कठोरता एवं बुराईयों को कुछ कम करने का प्रयास किया गया किन्तु इसे खत्म करने की दिषा में कोई ठोस प्रावधान नहीं किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कुछ सरकारों ने 'कमियौती प्रथा' को समाप्त करने की दिषा में कुछ कारगर कदम उठाए और दलितों पिछड़ों अति–पिछड़ों एवं आदिवासियों के सामाजिक–आर्थिक उत्थान के लिए कई लोक–कल्याणकारी योजनाओं को क्रियान्वित किया गया। जिसके परिणामस्वरूप अंतिम रूप से 'कमिया' प्रथा को समाप्त करने का प्रयास तो किया गया, किन्तु बिहार के कुछ क्षेत्रों में यह प्रथा आज भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है।

संदर्भ

1. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकांत, स्वर्ग पर धावा: बिहार में दलित आन्दोलन, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली, 2015 पृ0 16–17 एवं 20।
2. उपर्युक्त, पृ0 22–23।
3. हैमिल्टन, 'डिस्क्रिप्सन ऑफ हिन्दुस्तान'
4. फाइल एस.–25/1919 कॉन्फिडेंषियल और टी0 डब्ल्यू ब्रीज की रिपोर्ट 'कमिया' सिस्टम इन पलामू'।
5. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकांत, पूर्वोक्त, पृ0 25–27।
6. वही पृ0 20 एवं 29–31।
7. अकाल संहिता (फेमिन कोड, अध्याय VII, धारा 163)।
8. 'रिपोर्ट ऑन पुलिस ऑफ लोअर प्रोविन्स ऑफ दि बंगाल प्रेसीडेंसी, 1885, पटना डिविजन, पृ0 51।
9. पुलिस एडमिनिस्ट्रेषन रिपोर्ट, 1929।

10. कोलकत्ता वीकली नोट्स, खंड XIX ए, पृ0 1118।

11. पटना लॉ जर्नल, III ए (3A), पृ0 412

12. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकांत, पूर्वोक्त, पृ0 36–38।

13. 'चैतन्य चन्द्रिका' कार्तिक पूर्णिमा, सं0 1977 (सन् 1920), वर्ष 1, संख्या 3, पृ0 91–93।

14. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकांत पूर्वोक्त, पृ0 38–39।